IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

दृश्य माध्यमों में चरित्र परिकल्पना : स्वरूप और सिद्धान्त

Dr Jyoti Sharma
Associate Professor
Delhi University

दृश्य माध्यमों का जीवन और जगत में एक विशेष प्रभाव रहा है। आँखों से देखी चीज़ें या दृश्य हमें बहुत देर तक और बहुत दूर तक प्रभावित करते हैं। चाक्षुष-विधान की शक्तिमत्ता हर काल और युग में अपनी प्रभावोत्पादकता सिद्ध करती रही है। प्रत्येक वर्ग, समय और समाज में दृश्य माध्यमों से संप्रेषित विचारों का समत्व भाव से संचार हुआ है। 'दृश्य माध्यमों का जगत अपने साथ संगीत, चित्र, नृत्य, स्थापत्य आदि नाना कलाओं का सम्मिश्रण है।'1 प्राचीन काल में नाटक चाक्षुष विधान का हिस्सा रहा और वर्तमान में टी०वी०, सिनेमा आदि दृश्य- माध्यम के कुछ नए सिरे उभरे हैं। सभी दृश्य माध्यमों का अपने-अपने समाज और समय के सच से सीधा और तीखा सरोकार रहा है।

इस सरोकार को सम्भव और सबसे अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सभी दृश्य माध्यम जिस आधार भित्ति का प्रयोग करते हैं वह है- चरित्र परिकल्पना। सुनो जनमेजय नाटक की भूमिका में आद्यरंगाचार्य कहते हैं- 'मुझसे नाटक के पात्र ही नाटक लिखाते हैं।'2

साहित्य की अन्य विधाओं में तो कथा-विस्तार, वर्णन-सौष्ठव और विवेचन-विश्लेषण से भी काम चलाया जा सकता है लेकिन नाटक का तो पूरा कार्यव्यापार ही चरित्र निर्माण की प्रक्रिया से सम्पन्न होता है। दृश्य माध्यमों के निर्माण की धुरी है – 'चरित्र – परिकल्पना'। यहाँ प्रश्न उठता है कि ये 'चरित्र' है क्या?

चरित्र का अर्थगत विकास और विस्तार

दर्शनशास्त्र का एक खेमा इस तथ्य को स्वीकार करता है कि इस सम्पूर्ण संसार को चलाने वाली कोई आधिभौतिक सत्ता है। उस सत्ता ने ही पहले अपने मस्तिष्क में पात्रों (राम, श्याम, मोहन) की कल्पना की होगी और जब वे पात्र शरीर रूप प्राप्त कर 'इन एक्शन' होकर जगत में अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाने लगे तो चरित्र कहलाए।

मूलतः चरित्र की परिकल्पना मानव संरचना के आदि सूत्रों से जुड़ी है। दृश्य-माध्यम तो जगत या जीवन की ही अनुकृति है। नाटक के संबंध में तो कहा भी गया है-

त्रैलोकस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्। 3

दृश्य- माध्यमों के लिए लिखते हुए लेखक या निर्देशक भी विभिन्न पात्रों की कल्पना करता है और जब वे पात्र 'इन एक्शन' रूप में मंच पर उतर आते हैं तो 'चरित्र' कहलाते हैं। चरित्र की यह परिकल्पना दृश्य माध्यमों द्वारा ही सम्भव है और दृश्यात्मकता का प्रधान गुण है - चरित्र-परिकल्पना।

हिन्दी नाट्य दर्पण के रचयिता रामचन्द्र गुणचन्द्र भी चरित्र शब्द को पारिभाषित करते हुए लिखते हैं-

'जिसका अतीत काल में आचरण किया जाता था वह चरित्र कहलाता है।'4 रामचन्द्र गुणचन्द्र ने भी आलोच्य परिभाषा में चरित्र के अनुकृत पक्ष पर विशेष बल दिया है। साथ ही अतीत शब्द का प्रयोग कर ऐतिहासिक चरित्रों की ओर संकेत किया है। किन्तु चरित्र शब्द का प्रयोग व्यापक फलक और होता रहा है। चरित्र परिकल्पना जीवन या जगत की अनुकृति या अतीत का लेखा मात्र नहीं है, अपितु व्यक्तित्व को विशेष क्षण में विशेष फलक पर एकत्र उभारकर रख देने की प्रक्रिया है।

चरित्र का अंग्रेज़ी पर्याय है 'कैरेक्टर'। मूलतः 'कैरेक्टर' शब्द का प्रयोग विशेषता बताने वाले किसी चिह्न तथा उस यंत्र के लिए भी किया जाता था जो सिक्के की ढलाई के लिए प्रयुक्त होता था।5 मूल रूप से यह ग्रीक भाषा के उन दो शब्दों से व्युत्पन्न है, जिनके समकक्ष अर्थ की व्यंजना करने वाला अंग्रेजी शब्द है 'एनग्रेव'। 'एनग्रेव' का संज्ञागत अर्थ है 'चिह्न या अन्तर बताने वाला' तथा क्रियागत अर्थ है – 'अंकित करना', 'चिह्न लगाना' अथवा 'उत्कीर्ण करना'। इन शब्द अर्थों के आधार पर नाटकीय चरित्र शब्द का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है- 'किसी व्यक्ति अथवा पात्र का वह विशिष्ट चिह्न जो उसके आदर्श एवं आचरण के आधार पर उसे अन्य व्यक्तियों से पृथक कर दे। परन्तु क्योंकि मनुष्य जिस वातावरण एवं समाज में जीता है उसके मूल्य सतत परिवर्तनशील हैं, 'चरित्र' सामाजिक आदर्शों द्वारा प्रेरित व्यक्ति विशेष का व्यवहार अथवा आचरण - मात्र स्वीकार नहीं किया जा सकता। वैसे ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी में 'चरित्र' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता था।'6

चरित्र को व्यक्तित्व, नैतिकता तथा स्वभाव के पर्याय रूपों में भी स्वीकार किया जाता रहा। अमेरीकी मानसशास्त्रियों में हालिंगवर्थ ने चरित्र को मानवीय आचरण की विशेष कोटि में रखकर चरित्र और व्यक्तित्व को एक ही माना। मनोविज्ञानवेत्ता एब्बाट ने भी कहा- 'वस्तुतः चरित्र वही है जो व्यक्ति है।' अतः व्यक्तित्व और चरित्र को एक ही माना। हालाँकि कालान्तर में चरित्र और विशेषत: नाट्य चरित्र को व्यक्तित्व, नैतिकता या स्वभाव के पर्याय से मुक्ति मिल गई। लेकिन यह माना गया कि चरित्र का अर्थगत विस्तार मनोविज्ञान और व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का विस्तार अपने भीतर समेटे रहता है। नाट्य चरित्रों की परिकल्पना करते समय अपने समाज का नैतिक बोध भी उसमें शामिल होना चाहिए।

हर देश और काल में चरित्र को नाटक के प्रमुख तत्वों में परिगणित किया जाता रहा। भरत ने इसे 'नेता' कहा और अरस्तू ने 'एथोस' और 'डायनिया' शब्द का प्रयोग किया। नाटक के समस्त तत्वों पर बात करते हुए भी चरित्र को सदैव केन्द्रीय महत्व मिलता रहा।

चरित्र को व्याख्यायित करते हुए डॉ० नगेन्द्र भारतीय नाट्य साहित्य में लिखते हैं – 'जीवन के अन्तरंग का व्यापक अनुभव, लोक व्यवहार का ज्ञान, वस्तु व्यापार स्थिति, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, जगत व जीवन के प्रति विकसित हुई अपनी मौलिक दृष्टि, मानव जीवन की व्याख्या और मनोविज्ञान

की गहराई, रचनातंत्र के अभ्यास से प्राप्त सिद्धहस्तता और लेखक के व्यक्तित्व के निर्माण करने वाले तत्वों- अध्ययन, पांडित्य, भावुकता, कल्पना आदि - का उत्कर्ष आदि समस्त गुणों व शक्तियों का समवेत् परिचय हमें उसकी चरित्र - सृष्टि के द्वारा ही प्राप्त होता है।'7

स्पष्ट है कि हर युग का बौद्धिक, सामाजिक और संवेदनात्मक इतिहास जिसके कंधों पर टिका है वह है- चरित्र । इसलिए चरित्र की परिकल्पना नाटक, नाटककार और निर्देशक सभी के रचनाकर्म की शक्ति सामर्थ्य की कसौटी है। एक तरह से कहें तो सारी दृश्य विधाओं के अध्ययन का मूल सूत्र है। बकौल डॉ० जयदेव तनेजा – 'नाट्यालेख में प्रस्तुत पात्र नाटककार द्वारा रूपायित रेखाचित्र हैं, जिसमें मंच पर अभिनेता और निर्देशक को अपनी प्रतिभा एवं सूझबूझ से रंग भर कर जीवन्त चरित्र के रूप में प्रस्तुत करना है।'8 इसलिए चरित्र की गरिमा को बनाना और बचाना श्रेष्ठ अभिनेताओं के सम्मुख चुनौती बना रहा है। अपने समय और समाज के अनुकूल चरित्रों की तलाश और उनकी परिकल्पना सफल नाटककारों के सम्मुख चिन्तन और रचनात्मकता की कसौटी का आधार रहा है। यह आधार ही दर्शकों के बीच सही चरित्रों की पहचान का प्रश्न बनकर भी उभरता रहा है।

हालाँकि जैसा पहले गया कि दृश्य विधाएँ अन्य अनेक विधाओं का सम्मिश्रित रूप है इसलिए इस प्राणवान इकाई के अलग-अलग अंग उपांगों पर बात करना न तो उचित है और न आसान । किन्तु दृश्य विधाओं की व्यापक और गहरी समझ के लिए यह अनिवार्य है कि उस विशिष्ट अंग का विश्लेषण और उस पर विचार किया जाए जो दृश्य साहित्य की रीढ़ की हड्डी है, जिसके बिना दृश्यात्मकता सम्भव नहीं । महान नाटककार चेखव के शब्दों में 'मेरे दिमाग में ऐसे लोगों के चरित्रों की पूरी पलटन भरी है जो दिन रात अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करते रहते हैं कि मैं एक शब्द कह दूँ और वे निकल पड़ें।9 दृश्यात्मकता के सम्पूर्ण साहित्योतिहास में पात्रों की चरित्र - गरिमा केन्द्र में रही है। दृश्य माध्यमों का निर्माण ही चरित्रों के इर्द गिर्द होता है और एक नए सामाजिक चरित्र की तलाश के लिए होता है।

चरित्र की तलाश का सवाल हर देश व काल के लिए प्रासंगिक बना रहा है। विशेषतः दृश्य जगत में इस पर बहुत विचार-विमर्श हुआ। भरतमुनि ने अपनी नाट्यशास्त्र में 'रस' को प्रधानता दी और अरस्तू ने 'कथानक' पर बल दिया लेकिन दोनों ही नाट्यसिद्धान्त व परम्पराएँ निर्विवाद रूप से चरित्र के महत्व को स्वीकार करती हैं। इसलिए अभिनय के सभी अंगों पर बात करते हुए, इसे एक कुशल और काफी गम्भीर कर्म घोषित करते हुए, भारतमुनि ने 'परकाया प्रवेश' का नाम दिया और पश्चिम में स्तानिस्लाविस्की ने 'त्वचा के भीतर सरकना' कहा।

इस प्रकार भारतीय हो या पाश्चात्य सभी रंग दृष्टियों में चरित्र के महत्व को निर्विवाद स्वीकार किया गया।

भारतीच चिंतन पद्धति में चरित्र की परिकल्पना : स्वरूप और सिद्धांत

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वस्तु, नेता और रस को काव्य के प्रधान तत्व बताया गया है। इन तीनों तत्वों में से प्रधानता नेता यानि चरित्र की ही है। चरित्र नाटक के केन्द्र में है। वस्तु को नाट्य का शरीर कहा गया है। वस्तु और चरित्र गतिमय होकर जिस परम तत्व की ओर अग्रसर होते हैं, वही रस है।

इस प्रकार नाट्य-चक्र के इन तीनों उपकरणों की केन्द्रीय सत्ता जिस तत्व में है वह चरित्र है, जो वस्तु को रस दशा तक पहुँचाता है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के चौबीसवें अध्याय में कहा है -

नानावस्थाक्रियोपेता भूमिका प्रकृतिस्था
भृशमुद्योतयेन्नाट्यं स्वभावकरणाश्रयम्।।2।। 10

जिस पात्र की भूमिका करनी है उसी के स्वभाव को प्रकट करते हुए विभिन्न अवस्थाओं और क्रियाओं से युक्त भूमिका नाट्य को चमका देती है।

यहाँ तक कि भरत शब्द की लाक्षणिक व्याख्या करते हुए भी कहा गया- भरत शब्द अभिनेता के अर्थ में नाट्यशास्त्र में अनेकत्र प्रयुक्त है।'11

भरत के नाट्यशास्त्र का एक बड़ा हिस्सा पात्र और चरित्र तथा उसकी अभिनय कला से जुड़ा है। अभिनेताओं की चरित्रगत विशेषताएँ बताते हुए भरत 25वें अध्याय में लिखते हैं-

बुद्धिमत्त्वं सुरूपत्वं लयतालज्ञता तथा
रसभावज्ञता चैव वयस्स्थत्वं कुतूहलम् ।।29।।
ग्रहणं धारणं चैव गात्रावैकल्यमेव च ।।
जितसाध्वसतोत्साह इति पात्रगतो विधि: ।।30।। 12

(पात्र में ये विशेषताएँ होनी चाहिए- बुद्धिमत्ता, सुरूपता, लयतालज्ञता, रसभावज्ञता, उचित आयु, कौतूहल, ग्रहण (भूमिका को समझना), धारण (स्मरण रखना), देह की अविकलता (चुस्त दुरूस्त होना), घबराहट से उबरने की क्षमता तथा उत्साह।)

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में चरित्र की अभिनयगत परिकल्पना करते हुए शास्त्रीय विवेचन भी किया है। जिसके आधार पर - उत्तम, मध्यम और अधम नायक - चरित्रों के तीन भेद किए गए। नायिकाओं, नट, वादी, विदूषक आदि सभी पात्र कोटियों का शास्त्रीय अध्ययन विवेचन भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है और यह माना कि 'चरित्र' पद का अर्थ ही है – 'पहले आचरण किया हुआ।

भरत के नाट्यशास्त्र में परिकल्पित चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे चरित्र को सहज बनाना चाहते हैं। यानि जैसा जीवन सत्य है, चरित्र उसे हुबहू जिए और मंच पर प्रस्तुत करे। यही भरत की चरित्र परिकल्पना का वह बिन्दु है जो सम्पूर्ण भारतीय नाट्यशास्त्र को विश्व धरातल पर खड़ा कर उसे आज की नाट्य नब्ज़ से भी जोड़ता है। भरत कहते हैं कि अभिनेता जब मंच पर अभिनय करता है
यानि चरित्र रूप में परिकल्पित होता है, तो वह मानो एक ऐसा जीव होता है जो अपनी देह छोड़कर दूसरे की देह में प्रवेश कर चुका है अर्थात् उसका अभिनय सहज होना चाहिए –

यथा जीवत् स्वभावं हि परित्यज्यान्यदेहिकम्।
परभावं प्रकुरुते परभावं समाश्रितः ॥3॥
एवं बुधः परं भावं सोऽस्मीति मनसा स्मरन्
येषां वागङ्गलीलाभिश्चेष्टाभिस्तु समाचरत्।।4।। 13

(जैसे जीव एक देह से दूसरे देह में पहुँच कर अपना स्वभाव छोड़कर परभाव के आश्रित होकर परभाव (दूसरे के शील) को प्रकट करता है, वैसे ही चतुर अभिनेता मन में 'मैं वह पात्र हूँ' ऐसा ध्यान करता हुआ उस पात्र के भाव को प्रकट करे, जिसका वाणी, आंगिक अभिनय तथा लीला और चेष्टा का अनुकरण उसे करना है।)

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने भी चरित्र की परिकल्पना करते हुए उसे सहज माना लेकिन चरित्रों का वर्गीकरण करते हुए वे आदर्श चरित्र की ओर झुक गए।

प्रधानफलसम्पन्नोऽव्यसनी मुख्यनायकः ||7|| 14

अपने नायक के चरित्र को अव्यसनी घोषित कर उसे निरपेक्ष चरित्र बनाने की चेष्टा की। रामचन्द्र गुणचन्द्र की चरित्र परिकल्पना संबंधी दृष्टि आदर्श पात्रों के इर्द-गिर्द घूमती रही।

विश्वनाथ ने पात्रों और चरित्रों को व्याख्यायित करते हुए सामान्य परिभाषा ही दी परन्तु वे भी आदर्शवादिता और चमत्कार निर्माण को नहीं छोड़ पाए। अपने समय और समाज के अनुकूल ही उन्होंने चरित्रों को व्याख्यायित किया। उदाहरणस्वरूप नायक के चरित्र को परिकल्पित करते हुए कहा -

त्यागी कृती कुलीनः सुश्री को रूपयोवनोत्साही
दक्षोऽनरक्त लोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता। 15

(दाता, कृतज्ञ, कुलीन, लक्ष्मीवान, लोगों के अनुराग का पात्र, रूप, यौवन और उत्साह से युक्त, तेजस्वी, चतुर और सुशील पुरुष काव्य में नायक होता है।)

धनंजय ने और फिर वाग्भट्ट ने भी नाट्य-चरित्रों में आदर्श स्वरूप को ही मंच पर परिकल्पित करने का विचार दिया। धनञ्जय ने आदर्श नायक के 22 गुण गिनवाए तो वाग्भट्ट ने 28 गुणों की चर्चा की। पात्रों के अलग-2 खाँचे परिकल्पित किए गए। शारीरिक शक्ति और बाह्य सौन्दर्य, बुद्धि और वाक् निपुणता, आचार-व्यवहार और गतिशीलता संबंधी विशेषताओं के आधार पर पात्र या चरित्र इसलिए निर्धारित किए गए क्योंकि तद्युगीन जनसाधारण धार्मिक और नैतिक आधारभूमि को अधिक सख्ती से लेकर चल रहा था। साथ ही भारतीय नाट्य जगत में चारित्रिक संरचना का यह दृढ़ रूप इस बात का भी प्रमाण रहा कि यहाँ नाट्य का दायित्व 'कान्तासम्मित' ढंग से महत्तर आदर्शों व नैतिकता का संचार भी रहा है। नाट्य चरित्रों के माध्यम से सामाजिक चरित्रों की परिकल्पना भी भारतीय नाट्य जगत में लगातार होती रही है।

पाश्चात्य चिन्तन पद्धति में चरित्र परिकल्पना: स्वरूप और सिद्धान्त

पश्चिम नाट्य जगत में भी चरित्र परिकल्पना पर गम्भीर चिन्तन हुआ। प्लेटो के लेखों और एरिस्टोफेन्स की कृतियों में नाटक के स्वरूप और प्रभाव विवेचन के बीच पात्रों पर भी विचार किए गए।

अरस्तू

अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में वस्तु और रूप की प्रधानता के साथ-साथ व्यक्ति और शैली को भी प्रमुखता दी।

अरस्तू ने माना कि 'चारित्र्य वह है जिसके बल पर हम अभिकर्त्ताओं में कुछ गुणों का आरोप करते हैं'16 इसलिए अरस्तू ने चरित्र के लिए 'एथोस' शब्द का इस्तेमाल किया जिसका अर्थ है - नैतिक चरित्र। 17 स्वयं अरस्तू अपने काव्यशास्त्र में एथोस की व्याख्या करते हुए कहते हैं- 'पात्रों के नैतिक उद्देश्य को व्यक्त करने वाला।'18 अतएव अरस्तू द्वारा प्रयुक्त एथोस में संस्कृत नाट्यशास्त्र की भाँति 'चरित्र' का संबंध उस पक्ष - विशेष से है जिसके 'नैतिक चरित्र' कहते हैं। चारित्र्य तथा विचार दोनों पर एक साथ विचार करते हुए अरस्तू कहते हैं-

"ये ही दोनों - चारित्र्य तथा विचार - वे स्वाभाविक कारण है जिनसे कार्य उद्भूत होते हैं और इन्हीं पर सम्पूर्ण सफलता विफलता निर्भर करती है।"19 इस प्रकार अरस्तू ने समस्त कार्यव्यापारों की आधार पीठिका चरित्र को ही माना।

अरस्तू के काव्यशास्त्र में चरित्र तत्व की महत्ता उस स्थल पर और भी स्पष्ट हो जाती है जहाँ उन्होंने पात्र तत्व को त्रासदी और कामदी का भेदक तत्व स्वीकारा है। अरस्तू मानते हैं कि – 'कामदी जैसा कि हमने कहा है, निम्न श्रेणी के मनुष्यों का प्रस्तुतीकरण है।'20 इस प्रकार स्पष्ट है कि अरस्तू यह मानते रहे कि त्रासदी या कामदी का प्रमुख अन्तर चरित्रों, मूलतः नायक की चारित्रिक विशेषताएँ एवं लक्ष्य की उपलब्धि तथा योग्यता का अन्तर है। कार्यव्यापार चरित्र के माध्यम से ही प्रभावकारी हो सकता है। चरित्र और कार्य-व्यापार का अभिन्न संबंध अपने काव्यशास्त्र में दिखाते हुए अरस्तू ने चारित्रिक परिकल्पना को नाटक की नितान्त आवश्यकताओं में से एक माना।

यही कारण है कि अरस्तू ने 'चरित्र' के छह आधारभूत सिद्धान्त भी बताए 21 -

1) चरित्र को भद्र होना चाहिए।
2) दूसरी बात ध्यान रखने की है औचित्य। पुरुष में एक विशेष प्रकार का शौर्य होता है, परन्तु नारी चरित्र में शौर्य या चातुर्य का समावेश अनुचित होगा।
3) चरित्र जीवन के अनुकूल होना चाहिए।
4) चौथी बात यह है कि चरित्र में एकरूपता होनी चाहिए हो सकता है कि मूल अनुकार्य के चरित्र में अनेकरूपता हो किन्तु फिर भी अनेकरूपता ही एकरूपता होनी चाहिए।
5) चरित्र-निरूपण में नाटककार को अवश्यम्भावी या सम्भाव्य को ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए।
6) नाटक के चरित्र निरूपण में यथार्थ और आदर्श का कलात्मक समन्वय होना चाहिए।

इस प्रकार चरित्र परिकल्पना की विशद् विवेचना करते हुए अरस्तू का मत कि चरित्र भद्र हो यह प्रत्येक वर्ग में सम्भव है। भद्रता किसी वर्ग विशेष तक ही - सीमित नहीं है, अपितु सभी वर्गों के व्यक्ति भद्र हो सकते हैं। भद्रता को वे एक नैतिक गुण मानते हैं। इसलिए स्त्री, दास आदि को भी निकृष्ट घोषित करने के बावजूद इनके चरित्र में भद्रता का अभाव नहीं मानते।

चरित्रों के व्यवहारादि में औचित्य पर बल डालते हुए अरस्तू यह मानते हैं कि नाटककार को पात्र की प्रकृत, व्यक्तिगत या वर्गगत विशेषता को भी नहीं भूलना चाहिए। हालाँकि वर्गगत विशेषता के नाम पर व्यक्ति की विशिष्टता का निषेध भी नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए स्त्रियों का चित्रण करते हुए उसमें शामिल कोमल भाव का निषेध नहीं करना चाहिए। साथ ही यदि नारी में वीर या शौर्य भाव दिखाने का अवकाश है तो उससे भी पीछे नहीं हटना चाहिए, पर मूल प्रकृति कोमलता को भी नहीं छोड़ना चाहिए।

अरस्तू का विचार कि 'चरित्र जीवन के अनुकूल होना चाहिए।'22 यह सूत्र वाक्य भरत की ही भाँति चरित्र को यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा करता है जो यथार्थवादी रंगमंच का भी हिस्सा है। यानि अरस्तू मानते रहे कि चरित्र जीते-जागते, चलते-फिरते नर-नारी होने चाहिए, काल्पनिक पुतले नहीं। नाटक जीवन का जीवन्त अनुकरण है इसलिए जीवन के अनुकूल होना चाहिए।

चरित्र परिकल्पना में एकरूपता का सिद्धान्त भी नाटककार की कुशलता का परिचायक है। इस एकरूपता से अभिप्राय यह नहीं है कि परिकल्पित चरित्र पूरे नाटक में एक-सा ही व्यवहार करे । चरित्र में अस्थिरता हो सकती है या होती है। स्वभाव की विविधता सामान्यतः चरित्र में देखने को मिलती है। दर्शक समाज नाटक में आदि से अन्त तक हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता को नहीं चाहता बल्कि बदलते तेवर वाले चन्द्रगुप्त को पसंद करता है क्योंकि चन्द्रगुप्त कभी सत्ता मोह छोड़ वितृष्णा का आँचल पकड़ लेता है, तो कभी कर्मठ बनकर युद्धक्षेत्र में क्षात्रधर्म का पालन करता है। अरस्तू भी चरित्र में इस विविधता या अनेकरूपता के विरोधी नहीं हैं। यह विविधता तो चरित्र को जिज्ञासा से युक्त और संघर्षमयी बनाती है। लेकिन अरस्तू मानते हैं कि चरित्र में उत्पन्न इस अनेकरूपता के बावजूद चरित्र की मूल प्रकृति को नहीं भूलना चाहिए। चरित्र ग्रहण करने योग्य बना रहे इसके लिए पात्र की प्रकृति में बड़े-से-बड़े परिवर्तन के बावजूद कुछ संस्कार या परिवर्तनशीलता का धर्म बना रहना चाहिए। उदाहरणस्वरूप पात्र के चरित्र का परिवर्तन जिस दिशा में हो रहा है उसके बीज को किसी न किसी रूप में पूर्वसंकेतित कर देना चाहिए। अरस्तू चरित्र की गति के विरोधी नहीं हैं, अपितु चित्रण - विधि के पोषक हैं। वे मानते हैं कि चरित्र में गति या परिवर्तन चामत्कारिक नहीं हो सकता, बल्कि ऐसा परिवर्तन हो या परिवर्तन उस सीमा तक ही संभव है जहाँ तक दर्शक उसे सहज रूप में ग्रहण कर सकें उसी प्रकार के परिवर्तन वाला पात्र इब्सन के 'ए डॉल्स हाउस' की नोरा है। प्रथम परिचय में वो पति-प्रेमी, रमणी के रूप में सामने आती है पर अन्त में वह पति को छोड़कर चली जाती है। उसके चरित्र का यह परिवर्तन ऊपरी तौर पर तो बड़ा अटपटा प्रतीत होता है लेकिन इब्सन ने नोरा की स्वाभिमानी प्रकृति का संकेत करते हुए इस परिवर्तन को नाटकोपयुक्त बना दिया है।

चरित्र परिकल्पना संबंधी पाँचवाँ सिद्धान्त कि नाटककार को 'अवश्यम्भावी या सम्भाव्य' को ही अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। अर्थात् चरित्र केवल वर्गगत नैतिक गुण-दोषों पर ही आधारित नहीं है, अपितु सम्भावना नियमों के अनुसार व्यक्ति वैशिष्ट्य ज़रूरी है। प्रेक्षक भी अपना तादात्म्य उन कृत्यों या व्यापारों से कर पाता है जो मानव जीवन की स्वभावतः घटित होने वाली सम्भावनाओं को लेकर चलता है। अरस्तू के काल में अतिमानवीय दैवी घटनाओं के प्रयोग भी नाटकों में होते थे। भारतीय प्राचीन और पौराणिक नाटकों में भी अति मानवीय घटना-प्रसंग मिलते हैं लेकिन वे प्रसंग भी अपने-अपने समाजों के लिए सम्भाव्य हैं क्योकि वे अति मानवीय प्रसंग चरित्र या घटनाएँ जिनके प्रति लोकमन में संस्कार गत विश्वास पहले से ही मौजूद है, उसे दर्शक सहज स्वीकार करता है।

अन्तिम और अत्यन्त अनिवार्य तथ्य यह है कि नाटक की चरित्र - परिकल्पना में यथार्थ और आदर्श का कलात्मक समन्वय होना चाहिए। यानि चरित्र की परिकल्पना यथार्थ से जुड़ी हो लेकिन कलाकार अपनी कल्पना और भावना से उसे ऐसे आकर्षण और सौन्दर्य से मंडित कर दे कि वह एक कलाकृति बन जाए। अरस्तू का यह सिद्धान्त भारतीय रचनाकारों द्वारा भी समर्पित है। देवेन्द्र इस्सर के शब्दों में "कहानीकार की आँख में वह आँख तो शामिल है जो हम सबके पास है, लेकिन उसकी अन्तर्दृष्टि में कल्पना की उड़ान और सहज प्रज्ञा की गहराई भी है।"23 अरस्तू भी यह मानते हैं कि नाटककार को भी कार्य, काल तथा देश के सीमित आयामों को ध्यान में रखते हुए पात्रों के चरित्र की समस्त स्थूल नहीं अपितु चित्रकार की भाँति उन सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं को चित्रित करना चाहिए जो उसके कलात्मक औदात्य का समर्थन करे।

होरेस

अरस्तू के पश्चात् होरेस ने भी चरित्र परिकल्पना संबंधी 'औचित्य सिद्धान्त' प्रतिपादित किया। इस औचित्य सिद्धान्त की चर्चा करते हुए होरेस ने बताया विभिन्न पात्रों को उनकी अवस्था के अनुकूल गुणों से युक्त चित्रित करना चाहिए। उदाहरणार्थ, एक बालक का चित्रण करते समय बाल-सुलभ कार्यों एवं मनोवेगों का ध्यान रखना अपेक्षित होगा जैसे- पल में ही रूठ जाना, पल में ही मान जाना।' 24
होरेस के इस सिद्धान्त की पुष्टि अन्य सिद्धान्तों में भी हुई, जिन्हें अवस्था-सिद्धान्त, जीवनानुकूलता सिद्धान्त, परम्परा सिद्धान्त की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

औचित्य सिद्धान्त की व्याख्या के क्रम में होरेस ने परम्परा पालन को मुख्य बताया। अर्थात् जो व्यक्ति अपनी जिन चारित्रिक विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध रहा है, उसे उन्हीं चारित्रिक गुणों से युक्त चित्रित करना चाहिए। इस व्याख्या का यह अर्थ कतई नहीं है कि होरेस ने चरित्र की परिकल्पना में नूतन उद्भावनाओं को स्थान नहीं दिया, अपितु नूतन सम्भावनाओं को वहीं तक स्थान दिया, जहाँ तक उससे कला तथा सौष्ठव में वृद्धि हो। इसके विपरीत मनचाही और अनौचित्य चरित्र परिकल्पना को होरेस त्याज्य स्वीकारते हैं।

होरेस के अनुसार- "यदि कोई चित्रकार अपने चित्र में घोड़े की गर्दन और आदमी का सिर बनाए और शेष अंगों पर अनेक रंग-बिरंगे पंख लगा दे, जिससे एक ऐसा चित्र बन जाए, जिसका उर्ध्व भाग तो एक सुन्दर स्त्री का सा हो और अधोभाग एक कुरूप मछली का और उसे देखने के लिए आपको आमन्त्रित किया जाए, मेरे मित्रो! क्या आप अपनी हँसी रोक सकेंगे?"25

होरेस का औचित्य सिद्धान्त दो अन्य बातों पर भी बल देता है। पहली- चरित्र परिकल्पना के समय पात्रों के सामाजिक स्थान, मनःस्थिति, वर्ग, वर्ण, निवास-स्थान आदि का ध्यान रखना चाहिए। यानि संपूर्ण परिवेश की जानकारी होनी चाहिए। दूसरी- नाट्य एक सर्वांगपूर्ण कृति है। अतः इसमें चरित्र परिकल्पना सर्वरूपेण और सौष्ठवयुक्त होनी चाहिए। होरेस कहते हैं- 'अगर मेरी नाक टेढ़ी हो तो कजरारी आँखे और काले चश्मे किसी काम के नहीं।'26

होरेस का औचित्य सिद्धान्त अरस्तू से प्रेरित और प्रभावित है। लेकिन अपने सिद्धान्त को जितनी स्पष्टता से होरेस ने रखा है वही उनकी मौलिकता है। होरेस के इस सिद्धान्त को उनके परवर्ती आलोचकों विलियम आर्चर आदि ने भी समर्थन किया। भारतीय आचार्यों में क्षेमेन्द्र ने भी औचित्य सिद्धान्त को प्रश्रय दिया।

हेनेरिक जान इब्सन

नार्वे के सुप्रसिद्ध नाटककार इब्सन जिनका 'ए डाल्स हाउस' हिन्दी अनुवाद 'गुड़ियाघर' ने दुनिया भर में धूम मचा दी थी। इनके पात्र और उनकी चरित्र परिकल्पना दर्शकों को सहज ही अभिभूत कर देती है। 'ए डाल्स हाउस' की 'नोरा' का चरित्र भी दर्शक या पाठक अपने मस्तिष्क से भुला नहीं सकते। इब्सन ने अपने · चरित्रों की परिकल्पना उनके जीवन की तह में जाकर की है।"27

चरित्र परिकल्पना का नाटक और रंगमंच के लिए क्या महत्व है इससे इब्सन भलीभाँति परिचित थे तभी तो इब्सन ने कहा है- "मेरे मस्तिष्क में चरित्र पहले आते हैं, शब्द बाद में।"28

नाट्य रचना में जुटने से पहले इब्सन नाटक की एक रूपरेखा तैयार करते थे और इसे तीन भागों में बाँटते थे। ये तीन भाग नाटक और चरित्र के अन्तःसंबंध को स्थापित करने वाले तीन चरण हैं। पहला चरण या प्रथमावस्था में पात्र का नाटककार से परिचय रेल-यात्रा के क्रम में एक सहयात्री के साथ परिचय के समान होता है, जैसे कोई किसी से मिला और इधर-उधर की बातचीत की। दूसरी अवस्था में इब्सन ने लिखा है – मैं प्रत्येक वस्तु को अधिक स्पष्टता के साथ देखता हूँ - जैसे मैं उनके (पात्रों के) साथ कुछ सप्ताहों तक रहा हूँ। इस चरण में नाटककार चरित्र से बहुत गहनता से अवगत हो जाता है। तीसरी और अन्तिम अवस्था में पात्रों के चरित्र का निकटतम अध्ययन अपेक्षित है। इस चरण में पात्रों के साथ नाटककार का संबंध घनिष्ठ हो जाता है।29

इस प्रकार इब्सन ने चरित्र को परिकल्पित करने का जो सिद्धान्त दिया उसमें नाटक और चरित्र - परिकल्पना के गहन और अनिवार्य संबंध का विश्लेषण है। साथ ही चरित्र परिकल्पना को नाटक का महत्वपूर्ण तत्व घोषित किया है। इसलिए इब्सन चरित्र की परिकल्पना ऊपरी तौर पर न कर गहराई से उसका चित्रण करना चाहते हैं ताकि नाट्यलेखक कलाकार के और कलाकार - रचनाकार के चरित्र परिकल्पना संबंधी विचारों से परिचित हो सके।

विलियम आर्चर

स्कॉटिश नाट्यालोचक विलियम आर्चर भी चरित्र पर बात करते हुए उसे 'ज्ञानगम्य, भावगम्य एवं स्नायुमण्डलीय प्रकृति का सम्मिश्रण मानते हैं।'30 आर्चर का मत है कि चरित्र अपने निकटवर्ती समाज के प्रभाव और अभ्यास से निर्मित होता है। इसलिए वे मानते हैं कि चरित्र में प्रवृत्त हो रहे पात्रों के सामाजिक स्थान, मनःस्थिति, वर्ग, वय, वर्ण, निवास स्थान आदि का ध्यान रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।31

आर्चर ने चरित्र को नाटक का सर्वप्रमुख तत्व माना है। इसलिए उन्होंने नाटक अपने में चरित्र की प्रधानता और महत्ता पर बल देते हुए "चरित्र पर आधारित कथानक को जीवंत एवं कथानक पर आधारित चरित्र को मृत नाटक का कारण माना है।"32 विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए आर्चर मत रखते हैं कि नाटक के पात्र और उनकी चरित्र परिकल्पना जीवंत होनी चाहिए। चरित्र को कथानक के हाथ की कठपुतली न होकर चरित्र का स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए। आर्चर के अनुसार 'मानव चरित्र का निरीक्षण एवं अंकन प्रत्येक गम्भीर नाटक का लक्ष्य एवं सीमा है।'33

इस प्रकार आर्चर ने अपने विश्लेषण में चरित्र परिकल्पना को दृश्य विधा-नाटक का महत्वपूर्ण तत्व माना है नाटक में चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन ही इसका आदर्श होना चाहिए। हालांकि चामत्कारिक चरित्र परिकल्पना की आर्चर निन्दा करते हैं। आर्चर मानते हैं कि चरित्र का प्रकाशन या उद्घाटन होता है, परिवर्तन नहीं। अर्थात् किसी पात्र का चरित्र जिस रूप में अंकित है उसका बीज - पात्र के चरित्र में निहित होना चाहिए। कह सकते हैं कि आर्चर चरित्र - परिकल्पना में स्वाभाविकता और सहजता के पक्षधर हैं।

लाजस एग्री

प्रसिद्ध नाट्यचिन्तक लाजस एग्री भी अपनी पुस्तक 'द आर्ट ऑफ ड्रामेटिक राइटिंग' में स्वीकार करते हैं कि 'सभी प्रमुख यूनानी नाटकों में चरित्र ही कार्य की सृष्टि करते हैं।' यहाँ तक कि 'अरस्तू के समय में भी चरित्र महान तत्व था और किसी भी उत्तम नाटक की सर्जना उसके अभाव में हुई न होगी।'34 चरित्र परिकल्पना को नाटक का केन्द्र बिन्दु मानते हुए एग्री कहते हैं- 'चरित्र क्या है? एक ऐसा तत्व, जिसके गुणों का प्रकाशन अब तक नहीं हो पाया है।'35

एग्री चरित्र के गुणों में विश्वास रखते हैं। अरस्तू की चिन्तन पद्धति में भी वे नाटक के लिए चरित्र की वरेण्यता का पक्ष ही स्वीकारते हैं और मानते हैं कि 'बिना चरित्र के न तो उत्तम नाटक की सर्जना हुई है और न होगी।' नायक के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करते हुए एग्री समझाते हैं कि - नायक का चरित्र केन्द्र है जिसकी परिक्रमा नाटक के समस्त तत्व करते हैं। अतः चरित्र के बिना नाट्य की परिकल्पना सम्भव नहीं। एग्री चरित्र परिकल्पना पर विचार करते हुए चरित्र में आयामत्रय का उल्लेख करते हैं 1) शारीरिक 2) सामाजिक 3) मनोवैज्ञानिक आयाम।

चरित्र में इन तीन 'आयामों' की उपस्थिति का उल्लेख कर एग्री ने नाटककारों के लिए स्वस्थ चरित्रों की सृष्टि आसान कर दी। साथ ही चरित्र के विभिन्न पक्षों को खोल-2 कर रखा है और नाटककारों के सम्मुख आदर्श भी रखा है। एग्री ने चारित्रिक दृढ़ता को एक विस्तृत फलक पर प्रसारित

कर उसकी प्रत्येक स्थूल तथा सूक्ष्म विशिष्टताओं को खोजने और परखने का पूर्ण प्रयास किया है। एग्री की नज़र से नाटक द्वारा प्रस्तुत चरित्रों का मूल्य बोध होना चाहिए जो सामाजिक मूल्यों की स्थापना करे।

हालांकि एग्री द्वारा परिकल्पित चरित्र की आदर्शवादी रूपरेखा परवर्ती नाट्यालोचकों के लिए आलोचना का विषय रही। साथ ही चरित्र में आदर्श स्थिति के समावेश की अधिकता को कुछ आलोचक स्वीकार नहीं कर पाए। फिर भी चरित्र को समझने की गहराई और 'नाटक में चरित्र परिकल्पना की केन्द्रीय भूमिका है' एग्री के इस मत से अधिकतर आलोचक सहमत ही हैं।

मेरेन एलवुड

मेरेन एलवुड भी चरित्र परिकल्पना संबंधी अपने विचारों में चरित्र को सर्वाधिक महत्व का अधिकारी बताते हैं। वे नाटक के दो स्रोत मानते हैं - मनुष्य का मनुष्य से संबंध और मनुष्य का वातावरण से संबंध। दोनों ही स्रोतों में मानव-चरित्र की अवस्थिति है। इसलिए वे नाट्य के समस्त तत्वों को चरित्र का सहायक मानते हैं।

'कैरेक्टर्स मेक योर स्टोरी' नामक पुस्तक में एलवुड चरित्र परिकल्पना को एक गम्भीर और कठिन कर्म मानते हैं। उनका मत है कि नाटककार चरित्र को परिकल्पित करते हुए तीन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखता है। सर्वप्रथम नाटककार अपने चरित्र का चित्र अपने मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित कर लेता है। दूसरे चरण में वो चरित्र की प्रधान विशेषताओं का संकलन कर लेता है। अन्तिम और तीसरा चरण उन परिकल्पित चरित्रों के प्रदर्शन का है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ही भाँति मेरेन एलवुड ने भी 'मस्तिष्क के रंगमंच' की बात की है। साथ ही माना है कि चरित्र की परिकल्पना सर्वप्रथम नाटककार के मस्तिष्क में होती है।

चरित्र को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए एलवुड ने चरित्र परिकल्पना के छः आधार बताए हैं -
1) चरित्र को जीवन्त बनाकर ।
2) चरित्र को समाधान के लिए ज्वलन्त समस्या देकर।
3) चरित्र को तार्किक स्थिति में रखकर ।
4) चरित्र को वैसे गुणों एवं प्रधान चारित्रिक विशेषताओं से सम्पन्न कर जो उसकी चेष्टाओं एवं कार्यों की विश्वसनीयता एवं तर्कसंगतता को अवश्यम्भावी रूप में प्रमाणित करे।
5) कथा के प्रारम्भ में ही इस प्रकार के आवेगों और विचारधाराओं की योजना करे जिनके कारण दर्शक का मस्तिष्क पात्र के साथ घटित घटनाओं को स्वीकार कर स्वाभाविकता का आग्रह करे।
6) चरित्र के प्रत्येक कार्य के लिए कारण और अवस्था देकर।

इस प्रकार एलवुड ने चरित्र परिकल्पना में नाटककार की दृष्टि को महत्व दिया। साथ ही यह सिद्ध किया कि चरित्र के रूप में परिकल्पित होने की योग्यता प्रत्येक पात्र में नहीं होती। एलवुड के छः विचार सूत्रों में चरित्र की जीवन्तता, ज्वलन्त समस्याओं से उनका जुड़ना, तार्किक स्थितियों, चेष्टाओं और कार्यों की स्वाभाविक विश्वसनीयता, चरित्रों के कार्य-कारण संबंध, कथावस्तु व मंचीय स्थिति का चरित्र पर ही केन्द्रित होना आदि का विवेचन किया गया है।

एलवुड का मत रहा है यदि नाटक का चरित्र जीवन्त नहीं रहा तो उसकी कथावस्तु मृतप्राय हो जाएगी। चरित्र की परिकल्पना के बिना एलवुड नाटक की परिकल्पना नहीं कर पाते।

स्तानिस्लाव्स्की

चरित्र की भूमिकाओं और तैयारियों की विस्तृत चर्चा करते हुए स्लानिस्लाव्स्की ने अपने नाट्य सिद्धान्त 'मैथड' में चरित्र को नाटक के केन्द्र में रखा। 'चरित्र की रचना प्रक्रिया', 'भूमिका की संरचना', 'अभिनेता की तैयारी' नामक स्तानिस्लाव्स्की की तीन पुस्तकें जिनका हिन्दी अनुवाद विश्वनाथ मिश्र ने किया और जो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रकाशित हुई' स्तानिस्लाव्स्की के नाट्य सिद्धान्तों का ग्रंथ हैं। इनमें जैसा कि पुस्तकों के शीर्षकों से भी स्पष्ट है, स्तानिस्लाव्स्की ने अभिनेता को नाट्य रचना के केन्द्र में रखा। पात्र से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया के सात चरणों की चर्चा की। स्तानिस्लाव्स्की ने अपने आन्तरिक यथार्थ (इनर रियलिज्म) की चर्चा करते हुए यही कहा कि अभिनय कर्म विशिष्ट है जिसमें अभिनेता को उत्सर्ग और विसर्जन के द्वारा किसी और के चोले में पहुँचना होता है।

स्तानिस्लाव्स्की के सहयोगी वख्तांगाफ ने भी चरित्र परिकल्पना को तिब्बती दर्शन से जोड़ा और इस प्रक्रिया को ध्यान और योगाभ्यास की प्रक्रिया कहा।

अर्ताउड ने माना पात्र, चरित्र के रूप में परिकल्पित होते समय स्वयं को विसर्जित करता है। चरित्र कर्म की इस कठिनता के आधार पर ही अर्ताउड का रंगमंच 'क्रूरता का रंगमंच' कहलाया।

कुल मिलाकर भारतीय या पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों से चरित्र परिकल्पना को दृश्य विधाओं का केन्द्र स्वीकार करते हुए एक कठिन कर्म माना गया है। चरित्र ही कथा से रस तक पहुँचाने का मार्ग है। अतएव महान चरित्र की महत्ता और खोज हर मंच और समाज की आवश्यकता बना रहा है।

सन्दर्भ:

1. 'न तज्ज्ञानं, न तच्छिल्पं, न सा विद्या न सा कला।
   नासौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते।।' (नाट्यशास्त्र, 1.116)
2. सुनो जनमेजय – आद्यरंगाचार्य - भूमिका
3. अभिनवनाट्यशास्त्र
4. हिन्दी नाट्य दर्पण, पृ० 16
5. Encyclopedia of Religion & Ethics, Vol. 3, p. 364
6. Encyclopedia Americana, Vol. 6, p. 30
7. भारतीय नाट्य साहित्य, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० 312
8. समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि, जयदेव तनेजा, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र०सं० 1971
9. चेखव के तीन नाटक: अनु० राजेन्द्र यादव पृ० 'च'
10. संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, राधावल्लभ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, प्र०सं०, 2009, नई दिल्ली, पृ० 225 11. Encyclopadia of Natyasastra, Vol. I, Pratibha Prakashan, Delhi, Radhavallabh
    Tripathi, (परिचय से)
12. संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, राधावल्लभ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, प्र०सं० 2009, नई दिल्ली, पृ० 228
13. संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्, राधावल्लभ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, प्र०सं० 2009, नई दिल्ली, पृ० 225
14. (नाट्यदर्पण, पृ० 175)
15. साहित्यदर्ण, कारिका 30. तीसरा परिच्छेद, पृ० 65
16. अरस्तू का काव्यशास्त्र अनु० डॉ० नगेन्द्र, भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ० 39-40
17. वही ।
18. 'Character in a play is that which reveals the moral purpose of the agents.' (From the translation part of poetics as it appears in the basic works Aristotle, p. 1462)
19. अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ० नगेन्द्र, पृ० 20
20. "Comedy as we have said is a presentation of inferior people, Aristotle, The Poetics, p. 19.
21. अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ० नगेन्द्र, पृ० 39-41
22. अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० 39-41
23. आलोचना, वर्ष 60 अंक 1 में प्रकाशित देवेन्द्र इस्सर का निबन्ध 'चरित्र-चित्रण' पृ० 75
24. "The Child who can talk and feel his feet with confidence longs to play with his peers: is quick to anger, as quick to cool..." (The Complete Work of Horace, p. 402)
25. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा- होरेस, अनु० भाग, पृ० 61
26. वही।
27. I must penetrate into the last wrinkle of his soul. (Ibsen in 'Playwright on playwriting. p. 194)
28. "Before I write down one word, I have to have the character in mind through and through." (Ibsen in 'Playwright on playwriting. p. 194)

29. As a rule, I make three drafts of my drama which differ very much each other
in characterization, not in action, when I proceed to the first sketch of the material I feel as though I had the degree of acquaintance with my character, that one acquires on a railway journey, one has met and chatted about this or that. With the next draft I see everything more clearly, I know characters just about as one would know then after a few weeks stay in a stay. I have learned the fundamental traits in their characters as well as their little peculiarities....in. the last drafts, finally, I stand at the limit of knowledge; I know my people close and long association. They are my intimate friends, who will not disappoint me any way, ..." (playwrights on playwriting, p. 170)
30. A complex of intellectual, emotional and nervous habits. (Playwriting: A mannual of craftmenship, p. 57)
31. “चरित्र की सामाजिक पृष्ठभूमि क्या है ? चरित्र की मनःस्थिति क्या है? इस चरित्र से संबंधि तात्विक
नैतिकता क्या है?... ये प्रश्न पर्याप्त महत्व रखते हैं” (आलोचना, वर्ष 60 अंक 1 में प्रकाशित देवेन्द्र इस्सर का निबन्ध 'चरित्र-चित्रण', पृ० 76)
32. The difference between a live play and a dead one is that in the former the characters control the plot, while in the later, the plot controls the character.” (Play making: An Mannual of Craftsmanship, p. 17)
33. ...to observe and portray human character, this is the aim and end of all serious
drama, Ibid, p. 8
34. Character was the greatest factor in Aristotle's time and no fine play ever was
or ever will be written without it. (The Art of Dramatic Writing, p. 95)
35. ‘What is character? A factor whose virtues have not yet been discovered’. Ibid, p. 100